

### विचार बिन्दु

समय सबसे बड़ा चिकित्सक है, वक्त हर घाव का मरहम है। –कहावत

# आँवला अकेला ऐसा द्रव्य है जो सर्वश्रेष्ठ आहार, रसायन व औषधि है

राष्ट्रदूत में आयुर्वेद पर अतिथि संपादकीय पदकर बहुत सारे लोग एक प्रश्न पूछते हैं कि आप हमें एक ऐसा द्रव्य बताइए जो अमृत के सबसे नजदीक हो और जिसको लेने पर तमाम रोगों से दूरी बनी रहे। इसके उत्तर में प्रायः मैं यह कहता हूँ कि आपके लिये इससे सरल कोई प्रश्न हो नहीं सकता था और मेरे लिये इसका उत्तर देने से कठिन और कुछ नहीं हो सकता था। इस प्रश्न का निर्विवाद, सटीक और वस्तुनिष्ठ उत्तर देने के लिये आयुर्वेद वांग्मय की समस्त संहिताओं की गहरी समझ और गहन अध्ययन तो जरूरी है ही, उसके साथ ही आयुर्वेद के समस्त द्रव्यों में आज तक हुई आधुनिक वैज्ञानिक शोध को भी समझना जरूरी है। अंततोगत्वा, आयुर्वेदाचार्यों का अनुभव भी उन समस्त द्रव्यों में देखना जरूरी है जो आयुर्वेद की संहिताओं में ज्ञात हैं। अब आप समझ गए होंगे कि यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर खोजने में पूरा जीवन खर्च किया जा सकता है। फिर भी, पिछले पांच दशकों में आयुर्वेद की संहिताओं, आधुनिक वैज्ञानिक शोध और अनुभव की त्रिवेणी में बार-बार डुबकी लगाते हुये प्राप्त व्यक्तिगत समझ के आधार पर आज मैं इस प्रश्न का उत्तर दूँगा। आज की चर्चा इसी प्रश्न के उत्तर पर केन्द्रित है।

मेरे ज्ञान और विश्वास के आधार पर आँवला अकेला ऐसा द्रव्य है जो सर्वश्रेष्ठ आहार, रसायन व औषधि है। आँवला से बेहतर ऐसा कोई बहुआयामी द्रव्य नहीं है जिसे आप भोजन, रसायन और दवाई में एक साथ प्रयोग कर सकते हैं। आइये सबसे पहले आधुनिक वैज्ञानिक शोध से प्राप्त जानकारी के एक अंश को पहले देखते हैं।

उम्र-आधारित रोगजनन का एक प्रमुख कारण डी.एन.ए. रिपेयर मैकेनिज्म में गड़बडी होना माना जाता है। जीवित कोशिकाओं के गुणसूत्रों में पाये जाने वाले तंतुतुम अणु को डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड या डी.एन.ए. कहा जाता है। इसी में अनुवांशिक कोड निहित रहता है। जैसे जैसे डी.एन.ए. डैमेज का बोझ बढ़ता जाता है, शरीर बुढ़ापे की ओर बढ़ता जाता है। इस कारण अनेक समस्यायें जैसे कैंसर, न्यूरोडीजेनेरेशन और बढ़ती उम्र के कारण होने वाली अनेक व्याधियां विकसित हो जाती हैं। शरीर की कोशिकाओं द्वारा डी.एन.ए. डैमेज के संकेत प्राप्त करना और ट्रूट-फूट की मरम्मत करने की क्षमता उम्र के साथ घटती जाती है। इसीलिये बढ़ती उम्र में अनेक रोग लग जाते हैं। तो क्या रसायन के रूप में आमला बढ़ती उम्र के लोगों में डी.एन.ए. रिपेयर मैकेनिज्म की गति को बढा सकता है? इस विषय में कई अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि रसायन औषधियाँ डी.एन.ए. रिपेयर की गति को बढ़ाकर बुढ़ापा आने की घीमा कर देती हैं। हाल में हुये एक क्लीनिकल ट्रायल ( जर्नल ऑफ़ एथनोफार्माकोलॉजी, 2016, 191: 387–397) में पाया गया कि आमलकी रसायन के प्रयोग से डी.एन.ए. स्ट्रैंड में तोड़फोड़ की गति कम होती है तथा रिपेयर मैकेनिज्म तेज हो जाती है। यह रसायन सुरक्षित भी पाया गया है। एक अन्य अध्ययन में ( जर्नल ऑफ़ आयुर्वेदा एंड इंटीग्रेटिव मेडिसिन, 2017, 8:105–112), जो 45–60 वर्ष के लोगों के मध्य किया गया, पाया गया है कि आमलकी रसायन का प्रयोग रक्त की पेरिफेरल ब्लड मोनोन्यूलियर सेल्स में टीलोमीयर की लम्बाई में बदलाव किये बिना टीलोमेरेज क्रियात्मकता को बढा देता है। चूंकि इससे टीलोमियर के क्षरण में कमी आती है, अतः हितायु-सुखायु या हैल्थस्पान में बेहतरी होती है।

असल में आमलकी वह अमृत रुपी आयुर्वेदिक रसायन है जो आयुर्वेदाचार्यों के युक्ति-व्यपाश्रयी कौशल से मिलकर कैंसर, डायबिटीज, हृदयरोग समेत तमाम रोगों को ठीक कर सकता है या इनसे हमारा बचाव कर सकता है। आमलकी रसायन के चमत्कारिक प्रभाव का विज्ञान तो अभी पकड़ में आना शुरू ही हुआ है। आमलकी रसायन, आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया में भी लाभकारी पाया गया है।

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से पुनः देखा जाये तो यह सिद्ध करने के लिये कि आमलकी आयु को स्थिर करने वाला द्रव्य है, प्रमाणों के दो अलग-अलग समूह देखना आवश्यक है। प्रथम समूह यह कि कोई भी द्रव्य जो जीवन को सुरक्षित रख सकता है, उसमें दो गुण होना अनिवार्य है: पहला, फ्री-रेडीकल स्केवेंजिंग के द्वारा ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस को कम करना एवं, दूसरा, एन्टीइन्फ्लेमेटरी गुण का होना।इन दोनों गुणों के कारण ही कोई द्रव्य बढ़ती हुई उम्र के कारण लगने वाले रोगों से लड़ सकता है। प्रमाणों के दूसरे समूह में सीधे इस बात की देखना है कि उम्र के कारण होने वाली बीमारियों को रोकने एवं हो जाने पर उपचार करने की शक्ति आमलकी में है या नहीं। फ्री-रेडीकल स्केवेंजिंग एवं एन्टीइन्फ्लेमेटरी गुण के सन्दर्भ में आमलकी उच्चकोटि का रसायन एवं एंजाॅटोजेन होने के कारण दोनों ही प्रभाव पर्याप्त आधुनिक शोध में सिद्ध हुये हैं। बढ़ती उम्र की गैरसंचारी बीमारियाँ जैसे कैंसर, डायबिटीज हृदय रोग, अपर श्वसन तंत्र के रोग, मानसिक रोग एवं इन रोगों के कारण होने वाली

**असल में आमलकी वह अमृत रुपी**

**आयुर्वेदिक रसायन है जो आयुर्वेदाचार्यों के**

**युक्ति-व्यपाश्रयी कौशल से मिलकर कैंसर,**

**डायबिटीज, हृदयरोग समेत तमाम रोगों को**

**ठीक कर सकता है या इनसे हमारा बचाव**

**कर सकता है। आमलकी रसायन का**

**चमत्कारिक प्रभाव का विज्ञान तो अभी**

**पकड़ में आना शुरू ही हुआ है। आमलकी**

**रसायन, आयरन की कमी से होने वाले**

**एनीमिया में भी लाभकारी पाया गया है।**

एनलजेमिक, एन्टीमाइक्रोबियल, एन्टीएलर्जिक, एन्टीहाइपरलिपिडेमिक, एंटीहाइपरथायरायॉइडिज्म, एल्डोज रिडक्टेज इन्हाइबिटर, प्रोटीन काइनेज इन्हाइबिटर, गेस्ट्रोप्रोटेक्टिव, स्मृतिवर्धक, एन्टीअल्जोमर, एन्टीकेन्टेक्ट आदिगुण हैं। विश्व की सर्वाधिक हल्वगुण शोष-पत्रिकाओं में आमलकी पर 2200 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आँवला के गुणधर्मों पर शास्त्रीय सिद्धांतों एवं साइंटिफिक अध्ययनों के निष्कर्षों में पूर्ण समानता है। फिफला नामक उपयोगी रसायन में भी आमलकी एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। हालाँकि अभी क्लिनिकल ट्रायल्स का आवश्यकता है, परन्तु अभी तक के अध्ययनों में त्रिफला के रोगरोधी या प्रोफायलैक्टिक तथा रोगोपचारी या थेराप्यूटिक गुणधर्म का शास्त्रों और साईंस में निर्विवाद प्रमाणोकरण हुआ है।

आइये अब संहिताओं की ओर चलते हैं। आमलक वयःस्थापनानाम्(च.सू. 25.40) चरकसंहिता का एक महावाक्य है।अनेक शताब्दियों बाद आचार्य वाग्भट ने इसी वाक्य को वयसः स्थापने धात्री(अ.ह.उ. 40.56) दोहराया है।सन्दर्भ-विशेष में अर्थ यह है कि आमलकी या आँवला आयु को स्थिर करने वाले द्रव्यों में श्रेष्ठतम है। निहितार्थ यह भी है कि बढ़ती उम्र के बावजूद शरीर में आयु-आधारित-व्याधिजन्य या तो रुक जाता है या गति धीमी हो जाती है। आयु-आधारित व्याधिजन्य या एज-रिलेटेड-पैथोजेनेसिस समकालीन विश्व की सबसे गंभीर समस्या है जिससे बायो-मेडिकल साईंस अभी तक पर नहीं पा सका है।

कम से कम पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर वर्तमान काल तक लिखित या संकलित आयुर्वेद की संहिताओं और टांणों के निचोड़ के आधार पर यह कहना उचित है कि आयुर्वेद का ऐसा कोई टांण नहीं जिसने आमलकी को एक उच्चकोटि का भोजन, प्रभावी रसायन और महत्वपूर्ण औषधि के रूप में मान्यता नहीं प्रदत्त की हो। चरकसंहिता के अनुसार आँवला के वल्गु रस के अतिरिक्त सीस रस है। अम्लरस-प्रधान, रक्ष, मधुर, कषाय है। परम कष-पित्त नाशक, वृष्य या पुरुषत्व-वर्धक, रसायन, तथा गुल्म, उदर, ज्वर, पांडु, अतिसार, प्रमेह, काफला, कृमि आदि रोगों के विरुद्ध उपयोगी है। सुश्रुतसंहिता के अनुसार रक्त-पित्तशामक, नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला,पुरुषत्व-वर्धक रसायन है। भावप्रकाश निघंटु के अनुसार यह पुरुषत्व बढ़ाने वाला, रसायन एवं रक्त-पित्त-हर, गुल्महर और प्रमेहहर है।धन्वन्तरि निघंटु के अनुसार पुरुषत्व-वर्धक, रसायन, ज्वरहर, तथा स्त्रीरोगों में लाभकारी है। राजनिघंटु के अनुसार आमलकी रक्त-पित्त-हर है। इस सम्बन्ध में भावप्रकाश में वर्णित गुणधर्म देखना उपयोगी है ( पूर्वखण्ड 6.2.39–40): हरीतीकसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः। रक्तपित्तप्रमेहर्घ्नं परं वृष्यं रसायनम्॥ हन्ति वातं तटमत्वत्वात्पित्तं माधुर्यंलौक्यतः। कर्फं रक्षकपायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित्॥ आँवला हरीतीक की भाँति है, विशेषकर रक्त-पित्त-प्रमेहहर, पुरुषत्ववर्धक व रसायन है। अपने अम्ल रस व शीत वीर्य द्वारा वात का शमन और शुष्कता और कषाय के द्वारा कफ शमन करता है। इस प्रकार तीनों दोषों के शमन में विजयी होता है। आचार्य वाग्भट ने आमलक रसायन का वर्णन करते हुये लिखा है ( अ.ह.उ. 39.149): धात्रीरसक्षौद्र सितार्घृताग्नि हित्वाशनानां लिहतां नराणाम्॥ गुणशमामान्ति जरकाणि कार्प्या विशाला इव दुर्युहोत्॥।आमले का रस, शहद, खण्ड, तथा भी मिलाकर प्रतिदिन चाटते रहने से जरा-जन्य-विकार ठीक उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे बेमन से पड़े गये ग्रन्थ भूल जाते हैं। इसी प्रकार आँवले का वाजीकारक, अर्थात वृष्य या पुरुषत्व-वर्धक योग भी निर्दिष्ट है (अ.ह.उ. 40.27): कृष्णाधात्रीफलरजः स्वरसेन सुभाषितम्॥ शर्करामधुसर्पिर्भिलाढ्वा योऽयु पयः पिबेत्॥ स नरोऽशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति। जैसा कि आचार्य सुश्रुत ने भी कहा है ( सु.त्वि. 26.24–25): एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भाषितम्॥ शर्करामधुसर्पिर्भित्तुं लौढ्वा पयः पिबेत्॥ एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति। तात्पर्य यह है कि आँवला स्वरस से अच्छी तरह भाषित आँवला-चूर्ण में, खण्ड, मधु व भी मिलाकर जो व्याक्ति लेकर बाद में दूध पीता है, वह अस्सी साल की उम्र में भी युवा की तरह मौज मारता है।

इन सब तथ्यों के कारण भूले-बिसरे आँवले को अपने भोजन का अंग बनाने के लिये हमारा उत्साहित होना स्वाभाविक है। चलते-चलते आपको एक बहिया चटनी बनाने की विधि भी बता देते हैं। यह स्वादित चटनी आपको स्वस्थ रखने में मददगार हो सकती है। चार लोगों के लिये 12 बादाम भोगे और छिलके उतारे हुये या यदि जवान लोगों के लिये है तो छिलका सहित, 2 इंच अदरक का टुकड़ा, 12 मुनक्के, 4 आमलकी के ताजे फल, 1 मिर्च देसी, 4 दाना लहसुन, यदि आप लेते हों, 20 ग्राम अनार के ताजे दाने, 1 ग्राम मिश्री, 12 ग्राम घनिया के पत्ते और सैन्धव लवण स्वादानुसार लेकर पीस डालिये। बस बस गयी चटनी। आनंद लीजिये और स्वस्थ रहिये।

–अतिथि सम्पादक, डॉ. दीप नारायण पाण्डेय ( इंडियन फारेस्ट सर्विसे से सेवानिवृत्त, वर्तमान में राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान सहित अनेक विश्वविद्यालयों में विजिटिंग प्रोफेसर ) ( यह लेखक के निजी विचार हैं और 'सार्वभौमिक कल्याण के सिद्धांत' से प्रेरित हैं।)

# कृपा करके मुझे समाधान मत दीजिए, मुझे बस सब ठीक है कहिए! कड़वी दवा और मीठा ज़हर



प्रो. अशोक कुमार

लेखक होने का सबसे बड़ा खामियाजा यह है कि इंसान इस मुगालते में जीने लगता है कि लोग उसकी बात सोच-समझकर पढ़ रहे हैं। जब आप रात-दिन एक करके, राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निष्पक्ष पोस्टमार्टम करते हैं, प्राथमिक स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों और मेडिकल कॉलेजों तक की ज़मीनी हकीकत का डेटा जुटाते हैं, और आखिर में दो-तीन पन्नों का एक बहुत ही संतुलित एवं वैज्ञानिक समाधान लिखकर तैयार करते हैं-तो मन में एक उम्मीद जागती है।सोचते हैं कि मित्रगण फ़ोन करेंगे और कहेंगे-“अरे भाई! क्या अद्भुत विश्लेषण किया है आपने! अगर यह समाधान लागू हो जाए, तो शिक्षा व्यवस्था का कल्पवृक्ष खिल उठे।”

लेकिन जैसे ही आप उत्सुकता से किसी मित्र से पूछते हैं, “क्यों भाई, मेरा पिछला लेख पढ़ा क्या?”

तो उधर से एक ठंडी आह के साथ जवाब आता है-“अरे यार, तुम फिर वही कमियां निकालने बैठ गए! हर लेख में बस चुनौतियां, बस शिकायतें... कुछ सकारात्मक लिखा करो भाई!”

आप ज़ोर देकर कहते हैं, “अरे भाई! लेख में सिर्फ़ कमियां नहीं हैं, नीचे पूरा समाधान भी तो दिया है।”

पर सामने से निष्पक्ष भाव से उत्तर मिलता है-“अरे, समाधान तक कौन पहुँचता है? पहली तीन पंक्तियों में ही मूड खराब हो जाता है।”

अब आप इन भोले-भाले, सकारात्मकता के पुजारियों को कैसे समझाएँ कि जब कोई लेखक यह लिखता है कि “स्कूलों में शिक्षक नहीं हैं, महाविद्यालयों में कुर्सियाँ खाली हैं, विश्वविद्यालयों में फैकल्टी का अकाल है, और मेडिकल कॉलेजों में भी भगवान भरसे पढ़ाई रो रही है”- तो यह कोई आलोचना नहीं है, यह तो शिक्षा प्रणाली के दिव्य-रूपांतरण का उद्घोष है!

जरा ठंडे दिमाग से सोचिए! अगर किसी विद्यालय या विश्वविद्यालय में शिक्षक ही नहीं हैं, तो इसमें दुष्‍धी होने या छाती पीटने की क्या बात है? यह तो केंद्र और राज्य सरकारों की आत्मनिर्भर भारत योजना का सबसे व्यावहारिक और सफल मॉडल है!

न रहेगा गुरू, न रहेगी दक्षिणा! जब शिक्षक ही नहीं होंगे, तो छात्र स्वयं पढ़ेंगे। जब स्वयं पढ़ेंगे, तो आत्मनिर्भर बनेंगे। और जब बिना किसी गुरू के खुद ही डिग्री हासिल कर लेंगे, तो इससे बड़ा स्किल डेवलपमेंट (कौशल विकास) और क्या हो सकता है?

अब मेडिकल कॉलेजों को ही ले लीजिए। अगर वहां प्रोफ़ेसर नहीं हैं, तो यह तो बेहद हर्ष का विषय होना चाहिए। विद्यार्थी सीधे इंटरनेट और यूट्यूब से डू इट योरसेल्फ़ देखकर जब सीधे ऑपरेशन थियटर में उतरेंगे, तो वह सही मायनों में सेल्फ़-मेड डॉक्टर कहलाएगा। लेकिन अफ़सोस! हमारे देश के नीति-विश्लेषकों को इस

महान आत्मनिर्भर क्रांति में भी केवल चुनौतियाँ ही नज़र आती हैं!

हमारे मित्र कहते हैं कि हम विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोहों की भी बेवजह आलोचना करते हैं।

अब आप ही बताइए, अगर किसी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में रात-दिन प्रयोगशालाओं में पसीना बहाने वाले शोधार्थियों को बुलाया ही न जाए, और केवल दो-चार गोल्ड मेडल विजेताओं को मंच पर खड़ा करके रस्म अदायगी कर ली जाए-तो इसमें गलत क्या है? आखिर शोधार्थी का काम तो बंद कर्मरे में रिसर्च करना है, उसे गाउन पहनाकर मंच पर बुलाने से क्या रैंकिंग सुधर जाएगी?

और अगर उसी दीक्षांत समारोह में शोधार्थियों की जगह आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के कार्यक्रम, रंग-बिरंगे सांस्कृतिक मेले और फ़ोटो-ऑप्स आयोजित किए जा रहे हैं, तो यह तो अकादमिक विविधता का सर्वोत्तम उदाहरण है!

लेकिन हमारे जैसे नकारात्मक लेखक उसमें भी स्याही उड़ेल देते हैं कि-“साहब, दीक्षांत का मूल उद्देश्य भटक गया है।” अरे भाई, उद्देश्य भटकने में ही तो असली आनंद है, सीधे रास्ते पर चलकर आज तक किसका भला हुआ है? वास्तव में, समस्या जैसे में नहीं है; समस्या उस सकारात्मकता के चश्मे में है जिसे पहनकर हमारे मित्र समाज को देखना चाहते हैं। आज के आधुनिक पाठक की मानसिकता का अध्ययन करें तो उसके तीन मुख्य नियम हैं:-

नियम 1: “मुझे मीठी गोली दो।”-पाठक को यह मत बताओ कि उसकी इमारत की नींव हिल रही है, बस यह बताओ कि दीवार का पेंट कितना चमकदार है।

नियम 2: “समाधान बहुत लंबा होता है।”-समस्या पढ़ने में दो मिनट लगते हैं, लेकिन समाधान समझने के लिए दिमाग का इस्तेमाल करना पड़ता है। और आज के डिजिटल युग में सोचना सबसे महंगा और उबाऊ काम माना गया है।

नियम 3: “सब चंगा सी।”-यदि कोई व्यवस्था चल रही है (चाहे वह पटरी से उतरकर ही क्यों न चल रही हो), तो उसमें सुधार की बात करके शांति भंग मत करो।

जब हम लेख में लिखते हैं कि ”यदि शिक्षकों की भर्ती पारदर्शी तरीके से की जाए और विश्वविद्यालयों को नोकरशाही के प्रशासनिक हस्तक्षेप से मुक्त किया जाए, तो स्थिति सुधर सकती है”-तो पाठक को लगता है कि हम उसे कोई कठिन होम-वर्क दे रहे हैं।

वे सोचते हैं-“अरे भाई, समाधान लागू कौन करेगा? इससे अच्छा तो यह है कि तुम लिखो कि हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है, भले ही हमारी यूनिवर्सिटी टॉप-500 से बाहर ही।”

मित्रों की इन निष्पक्ष सलाहों के बाद, अब मैंने भी अपना दृष्टिकोण बदलने का निर्णय लिया है। अब से मेरे लेख कुछ इस प्रकार के सकारात्मक और उत्साहवर्धक होंगे:-

शीर्षक: “विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की शून्य उपस्थिति: एक ऐतिहासिक उपलब्धि।”

“यह अत्यंत गौरव का विषय है कि हमारे उच्च शिक्षण संस्थानों ने शिक्षकों से पूरी तरह मुक्ति पा ली है। अब न कोई वेतन का खर्च है, न ही फैकल्टी की गुटबाजी। छात्र अब पूरी तरह से स्वतंत्र हैं। दीक्षांत समारोहों को इतना आधुनिक बना दिया गया है कि

# शिक्षा का बढ़ता विभाजन और बच्चों का स्कूल से दूर होता भविष्य

शिक्षा में निजी और सरकारी के बीच बढ़ती खाई को कम करना सबसे बड़ी जरूरत



राजेन्द्र जोशी

शिक्षा किसी भी लोकतांत्रिक और विकसित समाज की सबसे बड़ी ताकत होती है। शिक्षा का उद्देश्य समाज में अवसरों की समानता पैदा करना, बच्चों को बेहतर भविष्य के लिए तैयार करना और आर्थिक-सामाजिक असमानताओं को कम करना है। लेकिन पिछले तीन दशकों में भारतीय शिक्षा व्यवस्था जिस दिशा में आगे बढ़ी है, उसने इस मूल उद्देश्य के सामने कई गंभीर प्रश्न खड़े कर दिए हैं। शिक्षा धीरे-धीरे दो स्पष्ट वर्गों में बंटती दिखाई दे रही है-एक ओर महंगे निजी शिक्षण संस्थान हैं, जहां आर्थिक रूप से सक्षम परिवार अपने बच्चों को पढ़ा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारी विद्यालय हैं, जिन पर मुख्यतः आर्थिक रूप से कमजोर और सामान्य परिवारों के बच्चे निर्भर हैं।

यह विभाजन केवल विद्यालयों का विभाजन नहीं है, बल्कि अवसरों

का भी विभाजन है। अमीर परिवार की बच्चा बेहतर संसाधनों, अंग्रेजी माध्यम, आधुनिक तकनीक, अतिरिक्त गतिविधियों और प्रतियोगी वातावरण के बीच शिक्षा प्राप्त करता है, जबकि गरीब और निम्न-मध्यम वर्गीय परिवार का बच्चा सीमित संसाधनों के बीच सरकारी विद्यालय में अपनी शिक्षा जारी रखने की कोशिश करता है। परिणाम यह है कि शिक्षा, जो सामाजिक समानता का सबसे प्रभावी माध्यम होनी चाहिए थी, कई मामलों में सामाजिक और आर्थिक दूरी को बढ़ाने वाली व्यवस्था बनती जा रही है।

सबसे गंभीर चिंता स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या को लेकर है। उपलब्ध सरकारी आंकड़ों और विभिन्न शैक्षिक रिपोर्टों में स्कूल ड्रॉपआउट की स्थिति को लेकर अलग-अलग आंकड़े सामने आते रहे हैं। व्यापक तस्वीर यह बताती है कि जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर ऊपर बढ़ता है, वैसे-वैसे विद्यार्थियों की संख्या में कमी आती जाती है। प्राथमिक स्तर पर जो बच्चे विद्यालय में प्रवेश लेते हैं, उनमें से सभी उच्च प्राथमिक तक नहीं पहुँच पाते। उच्च प्राथमिक से माध्यमिक और माध्यमिक से उच्च माध्यमिक स्तर तक पहुँचते-पहुँचते यह संख्या और कम होती जाती है। इसके बाद उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या में भी बड़ी गिरावट दिखाई देती है।

यह स्थिति केवल आंकड़ों का विषय नहीं है। इसके पीछे लाखों बच्चों के अधूरे सपने, परिवारों की आर्थिक मजबूरियाँ और शिक्षा व्यवस्था की

कमजोरियाँ छिपी हुई हैं। अनेक बच्चे आठवीं कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। इसके पीछे गरीबी, परिवार की आर्थिक स्थिति, विद्यालय की दूरी, परिवहन की समस्या, घरेलू जिम्मेदारियाँ, बाल श्रम, शिक्षा के प्रति परिवार की बदलती प्राथमिकताएँ और माध्यमिक स्तर पर पढ़ाई का बढ़ता खर्च जैसे अनेक कारण हैं। लड़कियों के मामले में सुरक्षा, आवागमन और घरेलू जिम्मेदारियाँ भी महत्वपूर्ण कारण बनती हैं।

सरकारों ने विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं को बेहतर बनाने और शिक्षकों की संख्या बढ़ाने की दिशा में निश्चित रूप से काम किया है। छात्र-शिक्षक अनुपात में पहले की तुलना में सुधार होना इसका सकारात्मक संकेत है। उपलब्ध सरकारी आंकड़ों के अनुसार शिक्षकों की संख्या लगभग 85.62 लाख से बढ़कर एक करोड़ से अधिक हुई है। इसके बावजूद विद्यालयों की कुल संख्या में कमी आई है। सरकारी र्णमिति के आंकड़ों के अनुसार विद्यालयों की संख्या 15.17 लाख से घटकर लगभग 14.71 लाख रह गई है। इन आंकड़ों को केवल संख्या के रूप में देखने के बजाय इनके पीछे छिपे कारणों को समझना आवश्यक है।

विद्यालयों की संख्या कम होने का एक कारण कम नामांकन वाले विद्यालयों का विलय भी हो सकता है, लेकिन इसका सीधा प्रभाव बच्चों की विद्यालय तक पहुँच पर पड़ता है। यदि गांव या दूरगमक के क्षेत्र में विद्यालय बंद होता है अथवा उससे दूसरे विद्यालय में मिला दिया जाता है तो छोटे बच्चों के लिए दूरी बढ़ सकती है। प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य नहीं हो सकता है। विद्यालय जितना दूर होगा, गरीब परिवार के लिए बच्चे को नियमित रूप से वहां भेजना उतना ही कठिन होगा। माध्यमिक स्तर तक ड्रॉपआउट की दर का बने रहना भी चिंता का विषय है। प्राथमिक स्तर पर बच्चों को विद्यालय से जोड़ना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी उन्हें माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर तक बनाए रखना है। केवल विद्यालय में प्रवेश दिला देना शिक्षा का लक्ष्य नहीं हो सकता। वास्तविक सफलता तब होगी जब बच्चा बारहवीं तक शिक्षा पूरी करे और उसके बाद उच्च शिक्षा, कौशल प्रशिक्षण अथवा रोजगार की दिशा में आगे बढ़ सके।

विकसित भारत की कल्पना केवल बड़े उद्योगों, आधुनिक शहरों और आर्थिक विकास से पूरी नहीं होगी। विकसित भारत का निर्माण उस बच्चे के भविष्य से होगा जो आज किसी सरकारी विद्यालय की कक्षा में बैठा है। यदि वह बच्चा आठवीं, दसवीं या बारहवीं से पहले शिक्षा छोड़ देता है तो देश अपनी एक संभावित प्रतिभा खो देता है। हर ड्रॉपआउट के पीछे एक ऐसा अवसर छूट जाता है, जो देश की अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति को समृद्ध कर सकता था।

इसलिए शिक्षा में निजी और सरकारी के बीच बढ़ती खाई को कम करना समय की सबसे बड़ी जरूरत है। सरकारी विद्यालयों को केवल गरीबों के विद्यालय की पहचान से बाहर निकालना होगा। उनमें वही गुणवत्ता, संसाधन, तकनीक, शिक्षक प्रशिक्षण

के लिए दूरी बढ़ सकती है। प्राथमिक शिक्षा में दूरी छोटी दूर नहीं है। विद्यालय जितना दूर होगा, गरीब परिवार के लिए बच्चे को नियमित रूप से वहां भेजना उतना ही कठिन होगा।

माध्यमिक स्तर तक ड्रॉपआउट की दर का बने रहना भी चिंता का विषय है। प्राथमिक स्तर पर बच्चों को विद्यालय से जोड़ना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी उन्हें माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर तक बनाए रखना है। केवल विद्यालय में प्रवेश दिला देना शिक्षा का लक्ष्य नहीं हो सकता। वास्तविक सफलता तब होगी जब बच्चा बारहवीं तक शिक्षा पूरी करे और उसके बाद उच्च शिक्षा, कौशल प्रशिक्षण अथवा रोजगार की दिशा में आगे बढ़ सके।

विकसित भारत की कल्पना केवल बड़े उद्योगों, आधुनिक शहरों और आर्थिक विकास से पूरी नहीं होगी। विकसित भारत का निर्माण उस बच्चे के भविष्य से होगा जो आज किसी सरकारी विद्यालय की कक्षा में बैठा है। यदि वह बच्चा आठवीं, दसवीं या बारहवीं से पहले शिक्षा छोड़ देता है तो देश अपनी एक संभावित प्रतिभा खो देता है। हर ड्रॉपआउट के पीछे एक ऐसा अवसर छूट जाता है, जो देश की अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति को समृद्ध कर सकता था।

इसलिए शिक्षा में निजी और सरकारी के बीच बढ़ती खाई को कम करना समय की सबसे बड़ी जरूरत है। सरकारी विद्यालयों को केवल गरीबों के विद्यालय की पहचान से बाहर निकालना होगा। उनमें वही गुणवत्ता, संसाधन, तकनीक, शिक्षक प्रशिक्षण

अब उसमें छात्रों की उपस्थिति की आवश्यकता ही नहीं रही। केवल डिजिटल स्क्रीन पर नाम चमका दिए जाते हैं। यह तकनीक और आत्मनिर्भरता का वह संगम है, जिसकी कल्पना भी पश्चिमी देश नहीं कर सकते।”

व्यंग्य को यदि एक तरफ रख दें, तो हकीकत यही है कि जब समाज समस्याओं की ओर से आंखें मूंदकर केवल झूठी प्रशंसा को ही सत्य मानने लगे, तो वहां समाधान की गुंजाइश खत्म होने लगती है।

जो मित्र यह कहते हैं कि “तुम सिर्फ़ कमियां निकालते हो”, वे दरअसल उस मरीज की तरह हैं जो डॉक्टर से कहता है-“तुम मुझे यह मत बताओ कि मुझे टायफाइड है, तुम बस यह बताओ कि मैं कितना सुंदर लग रहा हूँ।” एक सच्चा नीति-विश्लेषक और जागरूक लेखक कभी भी केवल आलोचना नहीं करता। वह तो उस सर्जन की तरह होता है जो चिरा इसलिए लगाता है ताकि घाव का मवाद बाहर निकल सके और शरीर स्वस्थ हो सके। लेकिन अफ़सोस, आज के सकारात्मक दौर में लोग चीरे का दर्द तो देखना चाहते हैं, पर उस चीरे के बाद मिलने वाले स्वास्थ्य को समझने का धैर्य किसी के पास नहीं है।

इसलिए, आगे से जब भी कोई दोस्त कहे कि “तुम्हारा लेख बहुत निराशाजनक था”, तो समझ जाइएगा कि आपने बिल्कुल सही दुखती रग पर हाथ रखा है। क्योंकि दर्पण का काम चेहरा चमकाना नहीं, केवल चेहरा दिखाना होता है।

– प्रो. अशोक कुमार, पूर्व कुलपति कानपुर, गोरखपुर विश्वविद्यालय, विभागाध्यक्ष राजस्थान विवि, जयपुर

शिक्षा का भविष्य

शिक्षा का भविष्य

शिक्षा का भविष्य

शिक्षा का भविष्य

और शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराना होगा जो अच्छे निजी विद्यालयों में दिखाई देता है। जब सामान्य और संपन्न परिवार भी अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में भेजने को तैयार होंगे, तभी सरकारी शिक्षा व्यवस्था में वास्तविक विश्वास पैदा होगा।

साथ ही ड्रॉपआउट रोकने के लिए केवल विद्यालयों को जिम्मेदार ठहराना पर्याप्त नहीं होगा। परिवार, समाज, स्थानीय प्रशासन और सरकार को मिलकर काम करना होगा। गरीब परिवारों के बच्चों के लिए छात्रवृत्ति, परिवहन, पुस्तकें, डिजिटल संसाधन और उच्च शिक्षा तक पहुँच की मजबूत व्यवस्था बनानी होगी। माध्यमिक स्तर पर बच्चों के लिए करियर मार्गदर्शन और कौशल आधारित शिक्षा भी जरूरी है, ताकि उन्हें पढ़ाई का उद्देश्य अपने भविष्य से जुड़ा हुआ दिखाई दे।

शिक्षा को दो वर्गों में बांटकर विकसित भारत का सपना पूरा नहीं किया जा सकता। जिस दिन देश का गरीब और अमीर, गांव और शहर, सरकारी और निजी विद्यालय का बच्चा समान अवसर के साथ आगे बढ़ सकेगा, उसी दिन शिक्षा वास्तव में सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनेगी। आज आवश्यकता विद्यालयों की संख्या बढ़ाने से अधिक विद्यालयों पर विश्वास बढ़ाने की है; नामांकन बढ़ाने से अधिक बच्चों को शिक्षा की अंतिम सीढ़ी तक पहुंचाने की है। भारत की सबसे बड़ी पूर्जी उसके बच्चे है। यदि इन बच्चों की शिक्षा बीच रास्ते में छूट गई तो विकास की पूरी यात्रा अधूरी रह जाएगी।

–राजेन्द्र जोशी, शिक्षाविद-साहित्यकार



**मेघ**